भारतीण ग्रामीण संस्कृति की झाँकी : कभी न छोड़े खेत

डॉ. सुषमा सहरावत,

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
कमला नेहरू कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारांश

उपन्यासकार जगदीशचन्द्र के उपन्यासों में अभिव्यक्त पंजाबी ग्रामीण परिवेश के सूक्ष्मतर ब्यौरे वहाँ की संस्कृति का सजीव–साकार चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं।

उनके उपन्यासों में पंजाब के अंचल विशेष की संपूर्ण संस्कृति साक्षात् हो उठी है। 'कभी न छोड़े खेत' उनका एक ऐसा ही उपन्यास है जिसमें आंचलिक जीवन के विविध पहलू अपनी जीवन्तता में उभर कर सामने आए हैं।

किसी भी देश की संस्कृति को वहाँ के परिवेश, आचार–विचार, संस्कारों, संबंधों अर्थात् सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़कर ही देखा–समझा जा सकता है। चूँकि हमारा भारत देश ग्राम्य प्रधान रहा है अतः भारतीय संस्कृति की जड़ें निस्संदेह ग्रामीण परिवेश से गहन रूप से जुड़ी हुईं हैं। यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जन–समाज पर बढ़ते पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव तथा विस्तृत होते नगरीय परिवेश को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता जिससे भारतीय साहित्य भी अछूता नहीं रहा और शहरी सभ्यता के प्रति बहुत से कवि–कथाकारों का रुझान लक्षित होने लगा किंतु वास्तव में भारतीय संस्कृति को हम तभी पूर्ण रूप से समझ सकते हैं जब हम भारत के ग्राम्य परिवेश को आत्मसात् कर लें। हिंदी साहित्य में अनेक ऐसे कवि–कथाकार हुए हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति को जीवंत बनाये रखा है।उनकी रचनाओं को पढ़कर किसी अंचल विशेष को सहजता से समझा जा सकता है। भारतीय संस्कृति के सजीव चित्र इनमें हमें दिखलाई पड़ते हैं। इन्हीं साहित्यकारों में उपन्यासकार जगदीशचन्द्र एक जाना–माना नाम हैं। उनके उपन्यासों में अभिव्यक्त पंजाबी ग्रामीण परिवेश के सूक्ष्मतर ब्यौरे वहाँ की संस्कृति का सजीव–साकार चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं। 1976 में प्रकाशित 'कभी न छोड़े खेत' उनका एक ऐसा ही उपन्यास है जिसमें पंजाब के अंचल विशेष की संपूर्ण संस्कृति साक्षात् हो उठी है। वस्तुतः ग्रामीण संस्कृति की अपनी एक पृथक पहचान होती है। वहाँ का जीवन, आचार–विचार सभी कुछ नगरीय जीवन से भिन्नता एवं विशिष्टता लिए होता है। 'कभी न छोड़े खेत में' पंजाब के आंचलिक जीवन के विविध पहलू अपनी जीवन्तता में उभर कर सामने आए हैं। इसमें पंजाब राज्य की दसूहा तहसील का 'कंधाला' गाँव केंद्र में है और दसूहा से उपन्यासकार का निकट संबंध रहने के कारण अनुभवजन्य प्रासंगिकता ने इस उपन्यास को और अधिक सजीव बना दिया है। सूरमा कभी खेत नहीं छोड़ता वाली कहावत को चरितार्थ करते सिख जाटों के जुझारू व्यक्तित्व को आधार बना कर लिखे गए इस उपन्यास में भारतीय पंजाबी

ग्रामीण संस्कृति के सूक्ष्मतर चित्र सम्मुख हो उठे हैं। वहाँ के रीति–रिवाजों, परम्पराओं, तीज–त्यौहारों, खान–पान, रहन–सहन, धर्म से लेकर आचार–विचारों, आस्था–विश्वासों, संस्कारों, सिद्धांतों तथा संबंधों तक में ग्रामीण भारतीय संस्कृति सजीव हो उठी है। भारत की संस्कृति में लोक तत्व का मिश्रण स्वाभाविक है। तात्पर्य यह कि भारतीय संस्कृति मूलतः लोक संस्कृति है। इसमें माटी की सुगंध बसती है। 'कभी न छोड़े खेत' में पंजाबी धरती की सौंधी महक से मन सराबोर हो उठता है। भारतीय संस्कृति विविध संस्कारों का सम्मिश्रण है। इस उपन्यास में चाहे विवाह हो, जचगी हो या कोई अन्य उत्सव, तमाम रस्मो–रिवाज़ हमें यहाँ देखने को मिलते हैं।

पारिवारिक संबंधों में मान–मर्यादा हमारी भारतीय संस्कृति की विशेषता है। स्त्री के प्रति सम्मानजनक भावना हमारी संस्कृति में रची–बसी है। किंतु वस्तुस्थिति इससे कहीं अलग दिखाई देती है। यही कारण है कि उपन्यासकार ने स्त्री जाति के प्रति सम्मानजनक भावनाओं को दिखाया है तो यह भी दर्शाया है कि व्यावहारिक स्तर पर संस्कृति के इस पहलू पर गौर करने की ज़रूरत है।पंजाबी ग्रामीण समाज में नारी की भूमिका महत्वपूर्ण है। वह विभिन्न पारिवारिक कार्य करने अतिरिक्त कृषि कार्यों में भी सहयोग देती है।गोबर पाथना, फसल की कटाई, पशुओं के लिए चारा लाना आदि कार्यों को ग्रामीण स्त्रियाँ करती हैं। पर कंधाला में स्त्री के प्रति अंतर्विरोधपूर्ण रवैया दिखाई पड़ता है क्योंकि एक ओर तो पुरुष स्त्री को झगड़े की जड़ समझते हैं और उसके प्रति कंजरी, कमजात, दो–मुँही साँपनी सरीखे अपशब्द तक बोलते हैं किंतु दूसरी ही तरफ समुचित सम्मान भी देते हैं। यहाँ तक कि अपने दुश्मन की माँ का भी आदर करते हैं और उस पर हाथ नहीं उठाते।

बड़े–बुजुर्गों का आदर–सत्कार हमारी भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। पर एक सत्य यह भी है कि पीढ़ियों के मध्य बढ़ती दरार ने तनावपूर्ण संबंधों को जन्म दिया है। आधुनिकता के बढ़ते प्रभाव की वजह से पारिवारिक संबंधों में उत्पन्न संघर्ष के फलस्वरूप ग्रामीण समाज में भी पुरानी और नई पीढ़ी के मध्य की दरार बढ़ने लगी है। पिता–पुत्र के तनावपूर्ण संबंध पीढ़ी–संघर्ष का ही परिणाम हैं। कंधाला में भी पीढ़ी–संघर्ष की यह स्थिति देखी जा सकती है। लच्छमी कहती है – 'हाकिम सिंह का बड़ा लड़का मिंदर है ना। उसने अपने बापू के गले में अँगूठा दे रखा था कि उसे साइकिल लेकर दे वरना वह पढ़ाई छोड़ देगा। इसी बात पर बाप–बेटे में झगड़ा हो गया था।' पुरानी और नई पीढ़ी के बीच विचारों की टकराहट के कारण ही पिछली पीढ़ी अगली को तथा अगली पीढ़ी पिछली को मूर्ख समझती है। बेबे रतनकौर नई पीढ़ी को नासमझ समझते हुए कहती है कि 'आजकल के बच्चों से तो रब ही बचाये। चाहते हैं कि इधर बात मुँह से निकले उधर पूरी हो जाए। मेरा तो अपना काका बहुत दुखी करता है। इस तरह खर्च कराते हैं जैसे घर में कारूँ के खजाने दबे हों।' परन्तु इन सब परिस्थितियों के बावजूद भी ग्रामीण लोगों में अपने बुजुर्गों के प्रति आदर–सत्कार नेक सलाह लाखों रुपये से ज्यादा होती है।' अपने बड़ों के प्रति सम्मान भावना के कारण ही बंचित सिंह जसवंत कौर के लड़का होने पर बधाई देने आई अपनी चाची बेबे रतन कौर से कहता है – बेबे, तेरे पैरों का प्रताप है। आप बुजुर्गों की असीसों का फल है।

पशुओं के प्रति प्रेम भारतीय संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। गाय को मातास्वरूप पूजने वाले हमारे देश में पशु–धन की मान्यता रही है। प्रतिदिन चौके की पहली रोटी गाय को अर्पित होती है। कंधाला का लोक–जन भी इसका अपवाद नहीं है। उनमें पशुओं के प्रति प्रेम और स्नेह भावना परिलक्षित होती है। बग्गे बैल के ज़ख्मी हो जाने पर उसकी पीड़ा देखकर बंचित सिंह और जसवंत कौर की आँखो में आँसू उमड़

आते हैं। इसी तरह करतार द्वारा बग्गे बैल को बेंत मार देने पर जगत सिंह को इतनी पीड़ा होती है कि वही बेंत अपने बेटे करतार की पीठ पर मारते हुए कहता है कि 'बैल को भी ऐसे ही पीड़ होती है जैसै तेरे हुई है।' (पृ.102)

खान–पान, वेशभूषा, रहन–सहन तथा रीति–रिवाज़ भारतीय लोक संस्कृति के मुख्य बिंदु हैं। इस उपन्यास में भी कंधाला गाँव के लोगों का खान–पान भारतीय लोक–संस्कृति की सुगंध लिए हुए है। छाहबेला अर्थात् नाश्ते में ग्रामीण जन लस्सी, मक्खन एवं रोटी खाते हैं। साथ ही भैंस के दूध, दही और आम के अचार का भी प्रयोग खाने में करते हैं। पिसे हुए नमक के स्थान पर डली के रूप में नून (नमक) का प्रयोग करते हैं।

वेशभूषा की दृष्टि से पंजाब की ग्रामीण स्त्रियाँ अधिकांशतः सलवार और जम्पर ही पहनती हैं। किंतु कभी–कभी घाघरा भी पहन लेती हैं जैसे जसवंत कौर काली सूफ का घाघरा पहन कर बाहर निकलती है ।ग्रामीण स्त्रियाँ दुपट्टा हमेशा पहनती हैं। पंजाब के गाँवों में पुरुष अधिकाँशतः तहबंद, कुर्ता, पायजामा और धोती ही पहनते हैं। वे हमेशा सिर पर साफा बाँधे रहते हैं। वे कुर्ते के नीचे एक कुर्ती भी पहनते हैं जिसकी जेब में वह अपने रुपये–पैसे संभाल कर रखते हैं। कुछ खास अवसरों पर ग्रामीण जन विशेष कपड़े पहनते हैं तथा श्रंगार करते हैं। उदाहरण के लिए–पुलिस के गाँव आने पर मुँशी बाबूराम ने 'बारीक किनारी वाली धोती, सफेद पॉपलीन का कुर्ता और कलफ लगी पगड़ी निकाल ली। मुँशी बाबूराम ये कपड़े खास–खास मौकों पर ही पहनता था।' मिलखा सिंह भी इस मौके पर उजले कपड़े पहनकर सरसों के तेल से अपने माथे और चेहरे को चमका लेता है। इसी तरह घर में वारिस पैदा होने की खुशी के मौके पर 'बंचित सिंह और जगत सिंह ने खिजाब लगाकर दाढ़ियाँ काली कर ली थीं और लश–लश करते तहबंध बांधे हुए थे।'

भारतीय संस्कृति में विविध रीति–रिवाज घुले–मिले हैं। ग्रामीण स्त्रियों में अपने बुजुर्गों के सामने तथा पराये मर्दों से घूँघट काढ़ने का रिवाज है। शादी–ब्याह के अवसरों पर गाँवों में तमाशा और नौटंकियाँ कराई जाती हैं इसीलिए 'जब ऊधे का ब्याह हुआ था तो तीन दिन तक गाँव में महफिल जमी थी। नकलें और तमाशा होता रहा था।' बच्चे के जन्म के अवसर पर भी गाँव में अनेक रस्में की जाती हैं। जसवंत कौर के लड़का होने पर ग्रामीण लोग विविध तरीके से बधाइयाँ देते हैं। बेबे रतन कौर बच्चे के सिर पर वारने के लिए ताँबे का पैसा लाती है। जेलदार दसोंधा सिंह बच्चे के शगुन के ग्यारह रुपये और सिर पर वारने के लिए एक रुपया देता है। बधाईयाँ स्वीकार करते समय सभी ग्रामीण जनों में गुड़ बाँटने का रिवाज भी है। गाँव में जच्चा को दाबड़ा अर्थात् गोंद खिलाया जाता है।गाँवों में प्रचलित विभिन्न मान्यताएँ भी इस उपन्यास में मिलती हैं। कोरी जमीन पर बैठना यहाँ अशुभ माना जाता है। बैलों के गले में घुंघरू बाँधना खुशी का प्रतीक माना जाता है। इसी तरह यह मान्यता है कि दोनों वक्त चूल्हा जलाने से घर में सुख–समृद्धि बनी रहती है।

प्राचीन काल से ही धर्म भारतीय समाज और संस्कृति में एक शक्ति एवं विश्वास के रूप में प्रमुख अंग रहा है। धर्म का शाब्दिक अर्थ है धारण करना।भारतीय संस्कृति में धर्म का अर्थ सहिष्णुता और सद्भाव माना गया है परंतु आज धर्म के सृजनात्मक पक्ष और आत्मिक स्वरूप के स्थान पर उसका बाह्य रूप अर्थात् कर्मकाण्ड अधिक दिखलाई पड़ने लगा है। इस उपन्यास में जगदीशचंद्र जी ने धर्म के विविध पक्षों का यथार्थ उदघाटन करते हुए ग्रामीण जीवन में व्याप्त धार्मिक भावनाओं एवं आस्थाओं के सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं। कंधाला के लोग कोई भी नवीन

कार्य प्रारंभ करने से पूर्व ईश्वर का स्मरण अवश्य करते हैं ताकि उनका समस्त कार्य बिना किसी अड़चन के कुशलतापूर्वक सम्पन्न हो जाए। इसीलिए बंचित सिंह अपने खजूर वाले खेत को जोतने का कार्य प्रारंभ करने से पूर्व पंजाली में हल जोतकर सर्वप्रथम वाहेगुरु का स्मरण करता है और उसके बाद ही बैलों को हाँकता है। ईश्वरवाद के अतिरिक्त यहाँ के ग्रामवासियों में बहुदेववाद और भाग्यवादी दृष्टिकोण भी मिलता है। धार्मिक आस्तिकता के कारण ग्रामीण स्त्रियाँ अपने घरों में माँस–मदिरा का प्रवेश तक वर्जित मानती हैं। इसी कारण पुलिस के गाँव आने पर जब मुँशी बाबूराम उनके खाने–पीने का प्रबंध अपने घर पर करना चाहता है तो उसकी पत्नी दुर्गो स्पष्ट कह देती है कि "अपने मुँह–मुलाहजे बाहर ही रका करो। बर्तन भी किसी और से माँग लेना। मैं अपने बर्तनों को हाथ नहीं लगाने दूँगी। भ्रष्ट हो गये तो कौन उन्हें दहकती आग में माँझेगा।" शास्त्रों और पुराणों में ग्रामवासियों की विशेष आस्था है। पण्डित गिरधारी लाल गीता और शास्त्रों पर आस्था व्यक्त करते हुए कहते हैं – "शास्त्र तो यह कहते हैं कि कर्म सच्चा हो और अपने मन की आवाज़ के विपरीत न हो।" धर्म ग्रामीण लोगों के जीवन में किस प्रकार अपनी भूमिका निभाता है और उनके पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन को प्रभावित एवं संचालित करता है, इसका सफल चित्रण जगदीशचंद्र जी ने इस उपन्यास में किया है।

लोक गीत–संगीत भारतीय संस्कृति में रचे–बसे हैं। इस उपन्यास में गुरुवाणी के पाठ पंजाबी वातावरण एवं परिवेश को साकार कर देते हैं। उदाहरण के लिए, जपजी साहिब का ये पाठ–

सोच्याँ सोच न होवई

जे सोचे लख बार

चप्चें चुप न होवईं

जे लाये रहा लिव तार

इसी तरह रेह–रास का पाठ भी दृष्टव्य है–

हमरी करो हाथ दे रच्छया

पूर्ण होय चित्त की इच्छया

राख लयो मोये रखन हारे

साहिब संत सहाय प्यारे

अंत में इतना ही, कि यदि पंजाबी ग्रामीण समाज की सम्पूर्ण जीवन पद्धति को अपनी समग्रता में जानना चाहते हैं तो 'कभी न छोड़े खेत' हमें निराश नहीं करता। तमाम अंतर्विरोधों को साथ लेकर चलने वाली भारतीय ग्रामीण संस्कृति का यथार्थ रूप इस उपन्यास में देखने को मिलता है।

संदर्भ

- जगदीशचन्द्र, कभी न छोड़े खेत, प्रथम संस्करण, 1976, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

Copyright © 2017, Dr. Sushma Sehrawat. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.